आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव

डॉ. सरोज कोचर
अध्यक्ष
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

जैन धर्म एवं दर्शन के उद्भव इसके आंतरिक सौंदर्य की गरिमा एवं दिव्य उपलब्धियों का कालसंवर्धन प्रत्यक्षदर्शी रहा है। इस धर्म के द्वारा करुणामयी सभ्यता का विकास हुआ। इस धर्म के द्वारा प्रकृति की सुरक्षा एवं संबंधन के लिये भगीरथ प्रयास किए गये। मानव सभ्यता के विकास की धारा अत्यन्त दीर्घ एवं प्राचीन है। ऋषभदेव इस आदि मानव सभ्यता के सूत्रधार थे। जैन परिभाषा में यह काल युगलियों का था।

ऋषभ का युग : कालचक्र परिवर्तित हो रहा था। मूल्यों का ह्रास हो रहा था। ऋषभदेव ने सभ्यता एवं संस्कृति के अंगों उपांगों का बीजारोपण किया। कल्पवृक्षों की संस्कृति विराम ले रही थी, प्रकृति का वैभव क्षीण हो रहा था, वृक्षों से फल-फूलों की प्राप्ति कम होने लगी। किन्तु उपभोक्तावादी संस्कृति का जनसंख्या में वृद्धि होने के कारण आधिक्य हो गया। सभ्यता एवं शिक्षण के अभाव में मनुष्य दिग्भ्रान्त हो रहा था। जनता में संग्रहबुद्धि की वृद्धि होने लगी। भविष्य की चिन्ता के कारण आपस में वैर, विरोध, घृणा, द्वेष आदि पनपने लगा। उदारता, सहिष्णुता, नि:स्पृहता, बंधुत्व भावना में कमी होने के कारण निष्क्रिय से सक्रिय कर्मभूमि का आरम्भिक काल था। क्षुधानिवारण जैसी मूलभूत आवश्यकता की सम्पूर्ति का उपाय दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का संचालन कुलकर करते थे। ऋषभदेव के पिता नाभिराय अंतिम कुलकर थे। कुलकरों को मनु भी कहा गया। सभ्यता के संक्रान्तिकाल में समय के पारखी नाभिराजा ने जन नेतृत्व का दायित्व अलौकिक गुणों से युक्त अपने सुयोग्य पुत्र ऋषभ कुमार को दिया। मानव जाति के लिए वह समय कठिन था। संकटग्रस्त मानव समूह को राज्य संचालन में दक्ष राजा की आवश्यकता थी, जिसे ऋषभदेव ने पूर्ण किया।

ऋषभकुमार का परिवार : श्वेताम्बर जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ कुमार का जन्म विनीता नगरी (अयोध्या) के राजा नाभिराय की सहधर्मिणी माता मरुदेवी की कुक्षि से हुआ। ऋषभदेव तीर्थंकर थे, अत: गर्भ में आगमन से पूर्व च्यवनकाल से ही वे मति, श्रुत एवं अवधि इन तीनों ज्ञानों के धारक थे। परिणामस्वरूप किसी कलागुरु

या कलाचार्य के पास शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी। वे सम्पूर्ण विद्याओं, निखिल कलाओं के सिद्धहस्त पारगामी जगद्गुरु थे। श्री महाराजा श्री नाभिराजा एवं देवराज इन्द्र की मन्त्रणा के आधार पर इनका विवाह सुमंगला और सुनन्दा नाम की कन्याओं से हुआ। यह विवाह मानव समाज के हितार्थ कालप्रभाव से वृद्धि को प्राप्त विषय-वासना को सीमित करने, पतन से बचाने के सूत्रपात के रूप में था। सुमंगला ने युगल के रूप में भरत और ब्राह्मी तथा सुनन्दानं बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया। सुमंगला ने कालान्तर में ४९ युगल पुत्रों को जन्म दिया।

ऋषभदेव के १०० पुत्र तथा २ पुत्रियाँ कुल १०२ सन्तानें थीं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार १०१ पुत्र तथा २ पुत्रियाँ थी।

प्रशिक्षण के विविध रूप : ऋषभदेव मात्र परलोक की कल्पना में रमण करने वाले नही थे, अपितु समाज परिमार्जन, परमार्थ की भावना से ओत-प्रोत युगद्रष्टा भी थे। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को ब्राह्मी लिपि सिखाते हुए महिलाओं की ६४ कलाओं का ज्ञान दिया। सुन्दरी को गणित ज्ञान की कला सिखाई। ज्येष्ठ पुत्र भरत को पुरुषों की ७२ कलाओं लेखनकला आदि तथा बाहुबली को प्राणी-लक्षण का ज्ञान दिया।

तत्कालीन समस्याओं के निवारणार्थ असि, मसि, वृषि की शिक्षा दी। सभी को परिश्रम पुरुषार्थ से उपार्जन करना सिखाया। उपार्जित सम्पदा का मिल कर उपयोग करें तथा फिर विसर्जन का दर्शन दिया। युग की माँग को सर्वोपरि मानकर जीवन जीने की नवीन दिशा दी युगबोध दिया।

कुमार ऋषभ ने अग्नि का बोध देकर गीली मिट्टी से पात्र बनाने उनमें भोजन पकाने की कला से अवगत कराया। समय समय पर सही मार्गदर्शन से समस्याओं का समाधान किया। उन्होंने जिन कार्यों की व्यवस्था दी, उन्हें षट्कर्म संज्ञा से अभिहित किया गया है। वे इस प्रकार है-

१. **असि -** शौर्य और शक्ति से सम्बन्ध रखने वाले कार्य

२. **मसि -** लेखन से सम्बन्धित कार्य

३. **कृषि -** अन्न और वनस्पति के उत्पादन से सम्बन्धित कार्य

४. **विद्या -** बुद्धि कौशल से सम्बन्धित कार्य .

५. **शिल्प-** हस्तकला एवं निर्माण से सम्बन्धित कार्य

६. **वाणिज्य -** व्यवसाय, वितरण से सम्बन्धित कार्य

कुमार ऋषभ ने लोक जीवन को स्वावलम्बी बनाना आवश्यक समझा। राष्ट्रवासी अपना जीवन सरलता पूर्वक आसानी से व्यतीत कर सके, अत: १०० शिल्प कर्मों की शिक्षा दी। आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुम्भकार का कर्म सिखाने के पश्चात् वस्त्र क्षीण होने पर पटकार-कर्म गेहागार वृक्षों के अभाव में वर्धकी कर्म, फिर चित्रकार कर्म और रोम नखों के बढ़ने पर काश्यपक अर्थात् नापित-कर्म सिखाया। इन पाँच मूल शिल्पों के २०-२० भेदों से १०० प्रकार के कर्म उत्पन्न हुए। एवं ता पढमं कुम्भकारा उपपन्ना--- पच्छा रोमनरवाणि वड्ढंति ताहे कम्मकरा उत्पाझाण्हाविया य---- एवं सिप्पसयं एवं ता सिप्पाण उप्पत्ति।।

ऋषभ का राज्याभिषेक : प्रकृति द्वारा सम्पूर्ण सुविधाओं यथा - कन्दमूल-फल- फूल, धन-धान्य आदि की उत्पत्ति अपर्याप्त, प्रभावहीन होने से अपराध-वृत्ति में छीना-झपटी पारस्परिक कलह कटुता वैमनस्य आदि में वृद्धि होने लगी। परिणामस्वरूप अन्तिम कुलकरों द्वारा प्रचलित धिक्कार की दण्डनीति भी नित्यप्रभावी सिद्ध होने लगी। प्रजा द्वारा ऋषभ कुमार को जीवन - निर्वाह हेतु समुचित व्यवस्था एवं मार्ग दर्शन देने की प्रार्थना की गई। अपराध वृत्ति पर अंकुश के लिए राजा ही दण्डनीति (दण्डव्यवस्था) का निर्धारण करते। इससे प्रजा कुमार को अपना राजा बनाना चाह रही थी, किन्तु कुमार ने कहा महाराज नाभि हमारे पूज्य हैं, उनके चरणों में उपस्थित होकर उन्हें राज्यपद के लिए निवेदन करें। नाभि ने असमर्थता प्रकट करते हुए कुमार ऋषभ को राज सिंहासन पर आसीन करने के लिए कहा। अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक महाराज नाभि के द्वारा अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के प्रथम राजा हुए। यहाँ कुलकर व्यवस्था समाप्त हुई और राज्यव्यवस्था प्रारम्भ हुई।

राज्यसंचालन - महाराज ऋषभदेव ने राज्यव्यवस्था हेतु आरक्षण दल सुगठित किया। इसके अधिकारी 'उग्र" कहे गये। मंत्रिमण्डल का निर्माण किया, पृथक-पृथक उत्तरदायित्व दिए गए। विभिन्न विभागों के उच्चाधिकारियों को "भोग" नाम से सम्बोधित किया। सम्पूर्ण राष्ट्र को ५२ सौ जनपदों में विभक्त किया। शासनसंचालन हेतु सुयोग्य व्यक्तियों का महामाण्डलिक राजा के रूप में अभिषेक किया। उनके अधीन अनेक छोटे-छोटे राजा रहते थे। शासन सम्बन्धी विचारों के आदान-प्रदान हेतु परामर्श मण्डल की स्थापना की। ये राजा महामाण्डलिक, मांडलिक, राजन्य, क्षत्रिय आदि उपाधियों से विभूषित हुए।

शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु प्रजा से थोड़ा-थोड़ा कर लेते एवं प्रजा के हितार्थ उन्हीं में खर्च कर देते।

दण्डव्यवस्था- सामाजिक जीवन को व्यवस्था देने के साथ ही उसके संचालन के लिए ऋषभदेव ने प्रशासनिक व्यवस्था को भी नया स्वरूप प्रदान करते हुए दण्डव्यवस्था का विधान किया। अपराध निरोध के लिए निम्नलिखित दण्ड व्यवस्था प्रचलित की –

१ **परिभाषण-** साधारण अपराध के लिए अपराधी को कड़े आक्रोशपूर्ण शब्दों से दंडित करना।

२. **मंडली बंध-**अपराधी को नियत समय के लिए सीमित क्षेत्र, मण्डल में रोके रखना।

३. **चारक बंध-** अपराधी को बन्दी गृह में बन्द रखना।

४. **अंगविच्छेद-** बार-बार जघन्य अपराध करने वालों के शरीर के अंगों का छेदन करना।

उपर्युक्त नीतियों के बारे में विभिन्न मत भी प्राप्त होते है। कतिपय आचार्यों के मतानुसार अन्तिम दो नीति चक्रवर्ती भरत जो कि उन्हीं के पुत्र थे, उनके शासनकाल में प्रचलित हुई। परन्तु आचार्य भद्रबाहु के मतानुसार चारों नीतियाँ ऋषभदेव के शासनकाल की हैं।

वर्ण व्यवस्था- महराजा ऋषभदेव से पूर्व सम्भवतया वर्ण या जातिव्यवस्था नहीं थी। ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं था। केवल मानव जाति थी। सामाजिक जीवन से नितान्त अनभिज्ञ तत्कालीन मानवसमाज शान्त सुखमय जीवन व्यतीत कर सके, उस हेतु सह-अस्तित्व, सहयोग, सहृदयता सहिष्णुता, सौहार्द सुरक्षा का पाठ पढ़ाते हुए पूर्णतया श्रेष्ठ समाज की आधारशिला रखी।

जो शारीरिक दृष्टि से सुदृढ और शक्ति- सम्पन्न थे उन्हें प्रजा की रक्षा के कार्य में नियुक्त कर 'क्षत्रिय' शब्द से सम्बोधित किया। जो कृषि, पशुपालन एवं वस्तुओं के क्रय-विक्रय अर्थात् वाणिज्य कर्म में दक्ष थे उन्हें "वैश्य" वर्ण से अभिहित किया गया। क्षत्रिय एवं वैश्य के कार्यों में इच्छा नहीं रखने वाले जनसमुदाय की सेवा में सन्धि रखने वाले वर्ग को 'शूद्र' की संज्ञा दी गई। इस प्रकार महाराज ऋषभदेव के शासन में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन तीन वर्णों की उत्पत्ति हुई।

आचार्य जिनसेन के मतानुसार उपर्युक्त त्रिवर्ग के नैतिक जीवन निर्माण में बौद्धिक सहयोग रहे इस लक्ष्य को नजरमध्य रख कर महाराज ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत ने ज्ञानवान् दयावान् व्यक्तियों को सम्मानित करते हुए उन्हे 'माहण' अर्थात् 'ब्राह्मण' नाम से सम्बोधित किया।

दीक्षा- (संयमी जीवन और निर्वाण) : महाराजा ऋषभदेव लोककल्याण की भावनाओं से ओत प्रोत थे। पदलिप्सा लेशमात्र नहीं थी। प्रजा ने उन्हें अपना राजा बनाया। जनहिताय, अनुशासन प्रिय, स्वावलम्बी, सुसभ्य समाज की संरचना करते हुए ६३ लाख वर्ष तक राज्य का न्याय एवं प्रेमपूर्वक संचारण किया। उन्होंने स्थायी शान्ति हेतु अध्यात्म साधना करने के लिये ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया शेष ९९ पुत्रों को पृथक-पृथक राज्यों का दायित्व देकर अपने चरण आत्म साधना हेतु अग्रेषित किए अर्थात् दीक्षार्थ अभिनिष्क्रमण किया। इन्हीं चक्रवर्ती भरत के नाम से देश का नाम भारत हुआ।

इधर प्रभु ऋषभदेव कठोर तपश्चर्या एवं साधना में निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त कर रहे थे, चरम अवस्था की ओर अग्रसर हो रहे थे, उधर राजा भरत अपने राज्य का निरन्तर विस्तार कर रहे थे तथा जम्बूद्वीप के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् बने।

भगवान ऋषभदेव ने १००० वर्ष कम १ लाख वर्ष तक तीर्थंकर पर्याय में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए जैन धर्म को सार्वभौम धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन अभिजित नक्षत्र के योग में दिन के पूर्व भाग में प्रभु ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुए। उस समय तीसरे आरक के समाप्त होने में ८९ पक्ष अर्थात् ३ वर्ष ८ माह और १५ दिन शेष थे।

ये ऋषभदेव आदिदेव कहलाये। वैदिक परम्परा में माघकृष्णा चतुर्दशी के दिन आदिदेव का शिवलिंग के रूप में उद्भव माना गया है। सम्भवतया भगवान ऋषभदेव की चिता पर जो स्तूप निर्मित हुआ, वही आगे चलकर स्तूपाकार चिह्न शिवलिंग के रूप में लोक में प्रचलित हुआ।

भगवान ऋषभदेव के पांच कल्याणक सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन, जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा, केवल ज्ञान आदि उत्तराषाढा नक्षत्र में हुए तथा अष्टकर्मों का क्षय कर अभिजित् नक्षत्र में मोक्षगमन हुआ।

जैनेतर साहित्य में ऋषभदेव : जैनेतर साहित्य में ऋषभ देव को अनेक नामों से अभिहित किया गया है। वे हिरण्यगर्भ प्रजापति, लोकेश, नाभिज, चतुरानन, स्रष्टा और स्वयंभू थे। हिरण्यगर्भ- जब भगवान माता मरुदेवी के गर्भ में आए उसके छ: मास पहले अयोध्यानगरी में हिरण, सुवर्ण तथा रत्नों की वर्षा होने लगी थी। इसलिए आपका हिरण्यगर्भ नाम सार्थक है। अन्य मत इस प्रकार है कि माता के गर्भ में शिशु के आने पर कुबेर ने हिरण्य की वृत्ति की इसलिए हिरण्यगर्भ कहलाए।

प्रजापति - कल्पवृक्षों के समाप्त होने के बाद असि, मसि, कृषि आदि षट्कर्मों से प्रजा का पालन-पोषण एवं रक्षा करने के कारण आप प्रजापति कहलाये।

लोकेश- समस्त लोक के स्वामी होने के कारण आप लोकेश कहलाये।

नाभिज- नाभिराज नामक मनु से उत्पन्न नाभिज हुए।

चतुरानन- समवसरण में चारों ओर से आपके दर्शन होते थे अत: चतुरानन कहलाए।

स्रष्टा- जीवन निर्वाह के संसाधनों, राज्य संचालन की व्यवस्था आदि के प्रवर्तक होने से स्रष्टा कहलाए।

स्वयम्भू- आत्म साधना, तप आदि से आत्म गुणों का विकास करने में तीर्थकर बने स्वयम्भू कहलाए।

वैदिक परम्पराओं के साहित्य में ऋषभदेव का परिचय प्राप्त होता है। पुराणों में वंश परम्परा का उल्लेख मिलता है।

लिङ्ग पुराण के ४७ वें अध्याय के अनुसार नाभि की रानी मेरु देवी से पुत्र हुआ, जिसका नाम ऋषभ था। वह सब राजाओंमें श्रेष्ठ और पूजित था। ऋषभ से वीर पुत्र भरत हुआ।

विष्णुपुराण के अनुसार ब्रह्माजी ने अपने से उत्पन्न स्वयं की ही स्थापना कर स्वायंभुव को प्रथम मनु बनाया। स्वायंभुव मनु से प्रियव्रत, प्रियव्रत से आग्नीघ्र आदि दस पुत्र, आग्नीघ्र से नाभि तथानाभि से ऋषभ हुये।

विष्णुपुराण के अनुसार नाभि की प्रिया मरुदेवी की कुक्षि से अतिशय कान्तियुक्त पुत्र ऋषभ हुआ। ऋषभ ने राज्य करते हुए वीर पुत्र माता को राज्याधिकार सौंपा और स्वयं ने तपश्चर्या हेतु पुलहाश्रम की ओर प्रस्थान किया। तब से यह हिमवर्ष लोक भारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव को यज्ञपुरुष विष्णु का अंशावतार माना गया है। ऋषभदेव को साक्षात् ईश्वर भी कहा है। भागवत में इन्द्र द्वारा दी गई जयन्ती कन्या से ऋषभ का विवाह हुआ और उसके गर्भ से सौ पुत्रों के होने का उल्लेख है। इसमें ऋषभ चरित्र की महिमा का वर्णन मिलता है।

ब्रह्मावर्तपुराण के अनुसार ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को अध्यात्मज्ञान की शिक्षा दी, स्वयं ने अवधूतवृत्ति स्वीकार की।

शिवपुराण के अनुसार शिव ने ही आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के रूप में अवतार लिया।

भारत वर्ष नामकरण :

मधुसूदन ओझा द्वारा रचित इन्द्रविजय के नामधेय प्रसङ्ग में (भारतवर्षस्य चत्वारि नामानि) में ऋषभपुत्र भरत से भारतवर्ष हुआ इसका उल्लेख किया है। स्कन्दपुराण में भारत वर्ष को नाभिवर्ष भी कहा गया है। यदिदं भारतवर्ष स्कान्दे तन्नाभिवर्षमप्युक्तम्।

भारत शब्द-प्रयोग के चार मतों में से ऋषभपुत्र भरत का मत इस प्रकार है - स्वायंभुवस्य हि मनोराग्नीघ्र: ---- वीर: पुत्रशताद्वर:॥

स्वायम्भुव मनु के आग्नीघ्र नाम के पुत्र हुए, आग्नीघ्र के नाभि, नाभि के ऋषभ हुए और उनके पुत्र भरत हुए, जिनका यह देश हुआ अर्थात् इन्हीं भरत के नाम से यह देश "भारत" कहलाया। हे द्विज ! आग्नीघ्र के पुत्र नाभि, उनके पुत्र ऋषभ के भरत नाम का पुत्र हुआ जो सौ पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ था। राजा भरत ने कैलाश पर्वत पर भव्य जिनालय का निर्माण करवा कर उसमें भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित की।

उपलब्ध साहित्य के विवेचन से यह स्पष्ट है कि ऋषभदेव युगादि के सम्पूर्ण मानवों के आदि व्यवस्थापक तथा प्रथम तीर्थंकर हुए, जिन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है।

धर्म एवं संस्कृति के प्रथम उपदेशक भगवान ऋषभदेव ने मानवीय चेतना को उद्बुद्ध करके मानवों के पुरुषार्थ को भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति की दिशा की ओर प्रेरित किया। भगवान ऋषभदेव को सार्वभौम लोकनायक, धर्मनायक, हृदयसम्राट के रूप में स्वीकार किया गया है। उनके द्वारा प्रस्थापित धर्ममार्ग "विश्वधर्म" अथवा शाश्वत धर्म के नाम से विख्यात हुआ। यह विश्वधर्म सम्पूर्ण विशेषणों से रहित मात्र 'धर्म' ही था। प्रथम धर्मप्रवर्तक ऋषभदेव मानव-जाति के सर्वप्रथम उद्धारकर्ता थे।

श्रीमद्भागवत के अनुसार वे वेदों के भी परमगुरु थे "सकल वेद-लोक-देव-ब्राह्मण-गवां परमगुरोर्भगवतः ऋषभाख्यस्य"। उनके अवतार के माहात्म्य को बताते हुए कहा गया है कि "अयमवतारो रजसोपप्लुत कैवल्योपशिक्षणार्थ:" भगवान का यह अवतार रजोगुण से व्याप्त लोगों को मोक्ष-मार्ग की शिक्षा देने के लिए हुआ था। इस प्रकार ऋषभदेव की महिमा श्रद्धा के साथ मुखरित हुई है।